शिवरामत्रिपाठिविरचित:

नृपविलास:

सम्पादक:

जनार्दनप्रसादपाण्डेय: 'मणि:'

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसर:

चन्द्रशेखर-आजादोद्यानम्

प्रयाग: - 211002



Ganganatha Jha Campus Text Series No. 68

General Editor

Prof. Sarvanarayan Jha

Nṛpavilāsa

by Shivram Tripathi

Edited by

Dr. Janardan Prasad Pandey 'Maṇi'



Rashtriya Sanskrit Sansthan

Ganganatha Jha Campus

Chandrashekhar Azad Park

Allahabad - 211 002

2011

Published by : Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002 (U.P.) India

First Edition : 2011

Price : Hard binding : ₹ 100/-
Paper back : ₹ 30/-

Printed At : **Shakuntal Offset**
34, Balrampur House
Allahabad

गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमालाप्रसूनम् - 68

प्रधानसम्पादकः

प्रो. सर्वनारायण झा

श्रीशिवरामत्रिपाठिविरचितः

नृपविलासः

सम्पादकः

डॉ० जनार्दनप्रसादपाण्डेयः 'मणिः'

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसरः

आजादोद्यानम् , इलाहाबादः 211002

2011

प्रकाशकः प्राचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
मानित-विश्वविद्यालयः
गङ्गानाथझा-परिसरः,
इलाहाबादः -2

संस्करणम् : प्रथमम्

प्रकाशनवर्षम् - 2011

मूल्यम् : कठिनबन्धावरणम् : ₹ १००/-
पत्रबन्धावरणम् : ₹ ३०/-

मुद्रणम् : शाकुन्तल ऑफसेट
३४, बलरामपुर हाउस
इलाहाबाद

आमुख

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान का गंगानाथ झा परिसर दुर्लभ पाण्डुलिपियों के संग्रहालय के कारण समूचे विश्व में अपना एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। संस्कृतजगत् के स्वनामधन्य शास्त्रज्ञों सुकवियों की अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ समय-समय पर विशेषज्ञ संस्कृत विद्वानों के द्वारा सम्पादित होकर सुविज्ञ पाठकों के समक्ष अध्ययन-अध्यापन, अनुशीलन एवं अन्वेषण के लिए प्रस्तुत होती हैं। यह श्रीरामत्रिपाठिविरचित ''नृपविलास'' इस परिसर का ६८वाँ सम्पादन है, जो सम्प्रति प्रकाशित किया जा रहा है।

संस्कृतसाहित्य में निरन्तर महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, स्तोत्रकाव्य, नाट्य तथा कथा प्रभृति अनेक विधाओं में रचनाएँ होती रही हैं। इन रचनाओं के चलते संस्कृत साहित्य आज विश्व साहित्य के समक्ष पुष्कल परिमाण के साथ उपस्थित होता है। विश्ववारा संस्कृति के उषाकाल में ही ऋषियों द्वारा दृष्ट वैदिक ऋचायें पूरी दुनिया के बीच प्रथम साहित्य के रूप में संस्कृतभाषा साहित्य में ही उद्‌भूत हुई थीं। ये बातें संस्कृत भाषा साहित्य की प्राचीनता तथा उसकी पुष्कलता को सर्वथा अभिप्रमाणित करती हैं।

शिवरामत्रिपाठिविरचित 'नृपविलास' संस्कृत साहित्य की उस विशिष्ट परम्परा का ग्रन्थ है जो परम्परा कूट श्लोकों, कूट पद प्रयोगों एवं कूट उक्तियों के माध्यम से पण्डितों एवं उनके आश्रयदाता राजाओं का बुद्धिविनोद करती थी। अनुप्रास, श्लेष एवं यमक अलङ्कारों के प्रयोगों एवं द्विरुक्तियों के माध्यम से संस्कृत कवि कभी-कभी विशेष कार्यों में व्यापृत एवं श्रान्त राजाओं के चित्त को आह्लादित कर राजसभा में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया करते थे। शिवरामत्रिपाठी ने प्रस्तुत 'नृपविलास' ग्रन्थ को अपने छोटे भाई केशवराम

त्रिपाठी के लिए लिखा था। राजा की चाटूक्ति उसकी प्रसंशा में उसको इन्द्र, वरुण एवं ब्रह्मा कहने की प्रवृत्ति, उसके राजघराने की सारी व्यवस्थाओं की प्रतिष्ठा में प्रसंशोक्ति की प्रवृत्ति प्रस्तुत ग्रन्थ के आलोक में अवलोकनीय है।

आचार्य कविवर क्षेमेन्द्र ने कभी कलाविलास, सेव्यसेवकोपदेश तथा नर्ममाला प्रवृत्ति ग्रन्थों में उपर्युक्त ग्रन्थ की परम्परा का श्रीगणेश किया था। बाद में कवियों ने इस परम्परा में भी पर्याप्त रचनायें कीं तथा वे रचनाएँ संस्कृत पाठकों के बीच नितान्त लोकप्रिय हुई, क्योंकि कभी-कभी प्रत्येक मनुष्य ऐसी मनोवृत्ति में होता है जब उसे इस प्रकार के कूटपद्यों को सुनने की इच्छा होती है तथा वह उनसे अपने चित्त का अनुरंजन करता है।

हमारे परिसर के साहित्यविभाग के सह-आचार्य कविवर डॉ० जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' ने बड़ी विद्वत्ता के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ ''नृपविलास'' का सम्पादन किया है। मुझे पता है इस ग्रन्थ की एक ही पाण्डुलिपि होने के कारण तथा उस पाण्डुलिपि में भी जगह-जगह पर अशुद्धि एवं अस्पष्टता होने के कारण डॉ. मणि को सम्पादन में पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा है। यह सच है कि बिना परिश्रम के तथा बिना गम्भीर सारस्वतसपर्या के कभी भी न तो किसी ग्रन्थ का निर्माण होता है तथा न ही उसका सम्पादन होता है। दुर्लभ संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन अपने आप में एक तपःपूत अनुष्ठान है। आज इस ग्रन्थ का प्रकाशन होने जा रहा है यह अनुभव कर अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। यह ग्रन्थ संस्कृत जगत् में लोकप्रिय होगा ऐसा मुझे पूरा विश्वास है। मैं इस ग्रन्थ के सम्पादक काव्य, अलङ्कार, नाटक आदि के अग्रगण्य विद्वान् कविश्रेष्ठ डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' को इस अवसर पर अनेक साधुवाद देता हूँ तथा ग्रन्थ की चिरन्तन संस्कृतलोकप्रतिष्ठा की कामना करता हूँ।

प्रो. सर्वनारायण झा

श्रीशिवराममत्रिपाठिविरचितः

नृपविलासः

भूमिका

सुरगवीसाहित्य का रसार्द्रकलेवर बहुत व्यापक एवं बहुरंगी है। काव्यवैविध्य एवं काव्यविधावैविध्य दोनों एक साथ मिलकर संस्कृत साहित्य को अनन्तता देते हैं। यही कारण है कि संस्कृत काव्य लोक में प्रवेश करने के बाद पाठक का हृदयानुरञ्जन भी होता है, बुद्धि विनोद भी होता है तथा वह सत्सङ्कल्प एवं सत्यव्रत के साथ सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित भी होता है। संस्कृतकवितायात्रा में चाहे कवि हो, या उसके आलोक में पाठक हो, उसकी समग्र सञ्चेतना लोकोत्तर आनन्द एवं लोक कल्याण की निर्मल रसस्यन्दिनी में हर पल नहाती रहती है। उसे तृप्ति तो मिलती है किन्तु कभी न समाप्त होने वाली प्यास उसके अन्तस् को झगझोरती रहती है। यही कारण है कि संस्कृत कवि एवं पाठक की परम्परा काल से लेकर चिरन्तन अधुनातन युग पर्यन्त विकास के नित्य नवीन प्रतिमानों का निर्माण करती जा रही है। सुन्दर सम्भावनाओं को संजोए हुए भविष्य उसकी अगवानी में प्रतिक्षण प्रस्तुत है।

संस्कृत कविता की इस सुप्रतिष्ठित परम्परा में महाकाव्य, खण्ड काव्य, कथा काव्य, नाट्य एवं अन्य प्रकीर्ण काव्य लिखे जाते रहे हैं। जो अपने अपने युग की रुचियों, मान्यताओं एवं प्रवृत्तियों को संजोये हुए ''साहित्य समाज का दर्पण होता है'' इस कथन को चरितार्थ करते हैं।

संस्कृत साहित्य की इस विविध रागरंगविच्छित्तिवाहिनी परम्परा में समय-समय पर युगरुचि के अनुसार लघु काव्यों, चित्रकाव्यो, शास्त्रकाव्यों, यमककाव्यों, श्लेष काव्यों एवं कूटकाव्यों का भी पर्याप्त लेखन होता रहा है। महाकवि क्षेमेन्द्र रचित कलाविलास, सेव्यसेवकोपदेश, समयमातृका, देशोपदेश, नर्ममाला, हलायुध विरचित कविरहस्य, नारायण विरचित धातु काव्य, घटकर्पर विरचित यमककाव्य, वासुदेवविरचित युधिष्ठिरविजय, चिदम्बरसुमतिविरचित यादवपाण्डवीय, रामकृष्णविरचित विलोमकाव्य तथा मेघविजयविरचित देवानन्दकाव्य प्रभृति ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रकृत ग्रन्थ ''नृपविलासः' इन्ही उपर्युक्त काव्यों की परम्परा में श्री

शिवराम त्रिपाठी द्वारा लिखा गया एक लघु काव्य (प्रकीर्ण काव्य) है। जिसमें क्षेमेन्द्र के कलाविलास की तरह व्यावहारिक लोक कलाओं की किञ्चिद् वर्णना है तो कहीं उनकी 'नर्ममाला' की तरह कूट शैली में राजा को प्रसन्न करने के लिए उसकी प्रशंसा एवं चाटुकारिता के पद्य हैं। कहीं कहीं प्रच्छन्न क्रिया पद प्रयोगों में कवि की व्याकरण विषयिणी अठखेलियाँ हलायुध के कवि रहस्य का प्रतिभास कराती हैं तो कहीं श्लेष एवं यमक के चमत्कार घटकर्पर एवं चिदम्बरसुमति के काव्यों का स्मरण कराते हैं।

नृपविलास में वे सारे रागरंग दिखते हैं जो किसी राजा के राजगृह के आभूषण होते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल १९० पद्य हैं। जिन्हें क्रमशः आशीः, स्तुतिः, सभा, चित्रजातिः, सौधः, वापिका, जलक्रीडा, वैश्या, समरतिः, विषमरतिः, चन्द्रिकाविहारः, स्त्री-अनुरागः, वाटिका, सामान्यदेशः, षड्ऋतुः, सूर्यचन्द्रोदयः, वायुः, आन्दोलनम्, प्रजा, अश्वः, गजः, खड्गः, केतुः, शिविका, पुरस्सरअश्वः, पुरस्सरगजः, रथः, धूलिः, प्रस्थानम्, युद्धाध्वम्, द्वन्द्वयुद्धम्, सन्धिपलायनम्, रिपुपलायनम् एवं रणभूमिः शीर्षकों में उपन्यस्त किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रयोजन को स्वयं इसके रचनाकार श्री शिवराम त्रिपाठी ने ग्रन्थ की पुष्पिका में अभिव्यक्त किया है। जहाँ वे कहते हैं कि श्री त्रिलोक चन्द्र के पौत्र, श्रीरामकृष्ण के पुत्र मुझ शिवराम त्रिपाठी ने अपने भाई केशवराम त्रिपाठी की प्रसन्नता के लिए इस 'नृपविलास' नामक ग्रन्थ की रचना की। यथा -

त्रिलोकचन्द्रात्मजकृष्णरामसुनुस्त्रिपाठी शिवरामनामा।
बन्धोर्मुदे केशवरामनाम्नश्चक्रे निबन्धं नृपतेर्विलासम्।।

अब श्रीशिवरामत्रिपाठी (ग्रन्थ रचनाकार) के भाई श्री केशवराम त्रिपाठी की प्रसन्नता का क्या मकसद था इसका संकेत या उल्लेख तो ग्रन्थ में कहीं प्राप्त नहीं होता। ग्रन्थान्तर में या संस्कृत साहित्येतिहास तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी केशवराम त्रिपाठी नामक राजा या महामंत्री की चर्चा नही मिलती। रचनाकार श्री शिवराम त्रिपाठी का उल्लेख भी सिर्फ न्यू कैटलागस् कैटलागारम्

में कुछ उपर्युक्त प्रकार से ही कुछ अन्य ग्रन्थों के रचनाकार के रूप में प्राप्त होता है। ऐसे ही काव्यमाला के पञ्चमगुच्छक में 'नक्षत्रमाला' नामक ग्रन्थ के रचनाकार एवं टीकाकार के रूप में तथा षष्ठगुच्छक में 'रसरत्नहार' नामक ग्रन्थ के लेखक एवं टीकाकार के रूप में आपका उल्लेख प्राप्त होता है। ग्रन्थातिरिक्त अन्यत्र कुछ भी उल्लिखित नहीं मिलता। इसलिए रचनाकार श्री शिवराम त्रिपाठी के जीवनकाल एवं जीवनपरिचय की किसी प्रकार की भी जानकारी दे पाना सम्भव नहीं है। चिन्तन करने पर ऐसा लगता अवश्य है कि श्री शिवराम त्रिपाठी के भाई किसी राजा के राजपुरोहित या महामात्य या अमात्य रहे होंगे। राजा को प्रसन्न करने के लिए उसन राजघराने के सारे औपनिवेशिक तन्त्र आभ्यन्तर एवं बाह्य समस्त औपचारिक एवं अनौपचारिक व्यवहार, उनकी माहात्म्य प्रशंसा एवं चाटूक्तियों को एक ग्रन्थ का रूप देने के लिए अपने भाई से निवेदन किया होगा। राजा का कृपाभाजन बनना चाहते होंगे, राजा का कृपा पात्र होकर ही उन्हें फिर सौख्य एवं आनन्द प्राप्त होना संभव होगा, अतएव श्री शिवरामत्रिपाठी ने अपने भाई (केशवराम त्रिपाठी) के लिए यह ग्रन्थ बनाया होगा।

अस्तु, जो भी हो यह ग्रन्थ लिखा तो गया। सरस्वती के भाण्डागार की शोभा में और एक काव्य पुष्प जुड़ा, यही इस सन्दर्भ में विशेष रूप से कहा जा सकता है।

काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से जब हम इस ग्रन्थ का अवलोकन करते हैं तो एक बात खुलकर सामने आती है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकार की दृष्टि रस ध्वनि (रसध्वनि, अलंकारध्वनि, वस्तुध्वनि) अलंकार वक्रोक्ति एवं औचित्य प्रभृति काव्य के सूक्ष्म एवं लोकोत्तर तत्त्वों की ओर उन्मुख नहीं है। राजघरानों में मनोविनोद के लिए की जाने वाली प्रहेलिकाओं, शब्दक्रीडाओं कूटोक्तियों राजा की अतिशय प्रशंसा में कही जाने वाली चाटूक्तियों तथा राजा को प्रिय लगने वाली नर्मोक्तियों की ही सारस्वत अभिव्यक्तियों में वह सर्वथा सावधान एवं केन्द्रित है। शब्दों की जादूगरी में उसे अधिक आनन्द आता दिखाई देता है इसीलिए अनुप्रास, यमक एवं श्लेष अलंकारों का बखूबी प्रयोग पद्यों में मिलता है।

उदाहणार्थ ग्रन्थ का प्रथम श्लोक ही प्रस्तुत सन्दर्भ में द्रष्टव्य है-यथा-

वृषाकपी शङ्खहस्तौ शितिचन्द्रांशशोभिनौ।
विनायकयुतौ नागयुतौ स्तां वः सुखप्रदौ।।

आशीः, श्लोक सं. ०१

कवि उपर्युक्त श्लोक में पार्वती एवं शिव को सब के लिए सुखप्रद होने हेतु आशीर्वादात्मक मंगल प्रस्तुत करता है। किन्तु कवि का प्रयास मूल रूप से अनुप्रास के प्रयोग पर केन्द्रित है। छेकानुप्रास एवं अन्त्यानुप्रास का यहाँ एक मञ्जुल समन्वय उपस्थित है। ऐसे ही राजा की प्रशंसा में श्लेष अलंकार का प्रयोग अवलोकनीय है।

नूनं वासवदत्तेव नानाश्लेषमनोहरा।
शारदेन्दुमुखीनां भाति केलिस्त्वया सह।।

रतिः श्लोक सं. ८

ऐसे ही यमक, परिसंख्या, उपमा आदि अलङ्कार कवि द्वारा बड़ी चतुरता के साथ प्रयुक्त किये गये हैं।

वेद, पुराण, ऋग्वेदशास्त्र, काव्यशास्त्र, तर्कशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, न्यायशास्त्र, कामशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, राजनीतिविज्ञान, धूर्त-विट-कूटनीति विज्ञान प्रभृति अनेकानेक आनुषङ्गिक विषयों को बड़े मनोरंजक तरीके से अलङ्कारों में पिरोकर कवि राजा को प्रसन्न करने हेतु उसकी स्तुति एवं प्रशंसा में मुखर होता है। इसकी एक छोटी सी बानगी अधोलिखित पद्यों में देखी जा सकती है।

अरुन्तुदं नो वदसि क्रुधाऽपि
वसुन्धरावासव यत्समित्सु।
जानन्ति तत्तत्त्वमहो न यज्ञाः
प्रियंवदस्यास्त्यवशंवदः कः।।

- स्तुतिः, श्लोक सं. ७

विजयार्थमनेकानि कर्माणि चरसि प्रभो!
अरिष्टवारणो दक्षो हरिवन्न जनार्दनः ॥

स्तुतिः, श्लोक सं. २१

तन्त्रशास्त्रविभिन्नोऽपि वित्तो मन्त्रमहोदधिः।
अवैद्यकागमोऽपि त्वं सुश्रुतो वैद्यजीवनः॥

– स्तुतिः, श्लोक सं. २२

भवान्कुवलयानन्दसम्पादनमहायशाः ।
अप्पदीक्षित इव श्रीमान् सदाऽलङ्कारसम्भृतः॥

– स्तुतिः, श्लोक सं. २४

पटुर्भवाऽऽनन्दकृतौ मुक्तावल्या विभूषितः।
अनधीती तर्कशास्त्रे कैर्न स्तुत्योऽसि भूपते॥

– स्तुतिः, श्लोक सं. ३३

ज्योतिर्विदाभरणमाह जनोऽत्र कोऽपि
त्वां ज्योतिषागमविभिन्नमपि प्रमादात्।
सर्वात्मनाभरणतः सकलस्य जन्तो
स्त्वां वच्म्यहं तु सकलाभरणं प्रमोदात्॥

– स्तुतिः, श्लोक सं. ३४

पराभवोद्भवा चिन्तामणिदीप्त्यातिशोभिनः।
नैय्यायिकस्येव न ते षडभिज्ञरिपोरपि ॥३६॥

– स्तुतिः, श्लोक सं. ३६

कामतन्त्र इवानङ्गरङ्गसङ्गातिशोभनः।
ततो रतिरहस्येन नारीणामतिरागकृत् ॥

– स्तुतिः, श्लोक सं. ३७

प्रत्यर्थिश्रियमादाय प्रत्यर्थिश्रियमुज्झसि।
भवानेवेदृशं कर्म कर्तुं धात्रा विनिर्मितः॥

– स्तुतिः, श्लोक सं. ४२

सदा राष्ट्रे मेश दुःखं त्वं जनानां क्रियापदम्।
गुप्तमत्र विजानन्तु लघुवर्णा गुणार्णवाः॥

चित्रजातिः, श्लोक सं. १८

विट इव बहुतरमदनो गणिकागणसंयुतश्चापि।
षट्कर्मेव स बहिर्बहुगायत्री समेतश्च॥

–सामान्यदेशः, श्लोक सं. ०२

तव सैन्यात्समुद्धूतं रेणुमभ्रंलिहं क्षणात्।
धूमं मत्वारिमशकाः सर्वदिक्षु प्रसुस्रुवुः॥

– धूलिः, श्लोक सं. ७

उपर्युक्त श्लोकों के अवलोकन के माध्यम से पूर्व में उल्लिखित ग्रन्थ के सार वैभव की विशिष्टता का आकलन किया जा सकता है।

प्रजा शीर्षक से प्रजा के वर्णन का कविगत नैपुण्य गद्य काव्य कादम्बरी एवं चम्पू काव्य नलचम्पू का स्मरण करा देता है। जहाँ कवि कुछ इस प्रकार प्रजा के परिप्रेक्ष्य में लिखता है –

निरस्तवेश्या अपि स्वगणिकासक्तचेतसः।
धनदा अप्यपौलस्त्याः पौरस्त्या अपि नागराः॥

– प्रजाः, श्लोक सं. १९

दानदा अपि नैवेभा वीतयोऽपि न घोटकाः।
कवयोऽपि न दैत्येज्याः शुचयोऽपि न वह्नयः ॥

– प्रजाः, श्लोक सं. २१

पूर्णकामा अपि भृशं जितकामा न शङ्कराः।
शङ्करा अपि नैवेशा ईशा अप्यवृषध्वजाः॥

– प्रजाः, श्लोक सं. २५

'नृपविलास' काव्य का सम्पूर्ण कलेवर ऐसे ही ललित मनोरञ्जक एवं गम्भीर पद्यों से भरा पड़ा है। कवि जब कूट पदों एवं प्रहेलिकाओं के सहारे मनोविनोद करता है तो ऐसा लगता है कि जैसे वह स्वयं तत्कालीन राजा से ही अपने कूट प्रश्नों का उत्तर माँग रहा हो। यथा –

कैलासे को निवसति कपर्दे कास्य शोभते।
कास्य गन्धगुणा मूर्तिर्विषेऽनेऽपि स कीदृशः।।

– प्रजाः, श्लोक सं. ६

कस्यातिगृह्या नगरी मात्यः कोऽस्यापि देहिषु।
संहितादिक्रमान्तेयं जातिगङ्गाधरामरः।।

– प्रजाः, श्लोक सं. ७

कोऽपर्णायाः पतिस्तस्याः सपत्नी का पिता च कः।
समस्तव्यस्तयोरुक्तं गङ्गाधर इति प्रभो।।

– प्रजाः, श्लोक सं. ९

इन्ही प्रकार के विलक्षण हृदय-मस्तिष्क एवं बुद्धि को झकझोरने वाले नृप-नृपगृह एवं नृपप्रजाकार्यप्रपञ्चविषयकपद्यों के चलते यह ग्रन्थ नितान्त लोकानुरञ्जक हो चला है। इस ग्रन्थ की सम्पादन यात्रा में मुझे यह अनुभूति प्रतिपद हुई है।

भाषा-भाव-विषयवस्तु एवं कथ्यशैली की दृष्टि से यह सुन्दर काव्य कहे जाने योग्य है। छोटे से कलेवर में इतने विषयों को आत्मसात् कर लेना इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है, एवं ग्रन्थकार की अपूर्व सामर्थ्य का उद्घोष है।

ग्रन्थ की एक ही मातृका मिलने के कारण इसके सम्पादन में मुझे बड़ी कठिनाई हुई है। लिपिकार का लेख बहुत त्रुटिपूर्ण तथा भाषा की दृष्टि से भी अशुद्धिपूर्ण दिखा है। इस अशुद्धि को मैं रचनाकार की अशुद्धि तो नहीं कह सकता, क्योंकि रचनाकार श्री शिव राम त्रिपाठी अनेक ग्रन्थों एवं टीकाओं के कर्ता हैं। उनकी वैदुषी नमस्करणीय है। इसलिए लिपिकार के दोषों का परिस्कार कर यथाशक्ति शुद्ध सम्पादन का प्रयास किया गया है। कहीं-कहीं लिपिकार ने श्लोक की पूरी एक दो पङ्क्तियाँ छोड़ दी हैं, तो वहाँ किसी प्रकार परिवर्तन नहीं किया गया है।

• संस्कृत-वाङ्मयकोश, द्वितीयखण्ड, पृ० १६८, में प्रो. श्रीधरभास्करवर्णेकर ने 'नृपविलास' नाम के एक अन्य काव्य का भी उल्लेख किया है। जिसके रचनाकार श्री पर्वणीकर सीताराम हैं। इसका रचनाकाल अठारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के बीच आँका जाता है।

ग्रन्थ में छन्दोगत दोष भी पर्याप्त मिले हैं। जहाँ एक दो पदों के प्रयोग से छन्द शुद्ध हो सकता है वहाँ मैंने ऐसा करके श्लोक की छन्दोगत परिशुद्धि की है, किन्तु जहाँ पूरी पङ्क्ति का ही परिवर्तन, छन्दोदृष्टि से आवश्यक प्रतीत हुआ है, वहाँ ऐसा न करके उसे तद्वत् रख दिया है। छन्दोगत सन्दर्भ में तो मुझे कहीं कहीं रचनाकार को ही किसी शब्द विशेष के प्रति आग्रह तथा छन्दोगत विधान में प्रायोजित लापरवाही के दर्शन हुए हैं। अतः उन जगहों पर किसी भी प्रकार के परिवर्तन से निरपेक्ष हो गया हूँ। सम्पादक के रूप में यह बात स्पष्ट कर देना मैं अपनी व्यावसायिक ईमानदारी समझता हूँ। इसीलिए कह दिया हूँ।

आज इस ग्रन्थ को संस्कृत जगत् के समक्ष उपस्थित करते हुए मैं अत्यन्त आनन्द एवं परितोष कर अनुभव कर रहा हूँ। इस ग्रन्थ के सम्पादन की स्वीकृति प्रदान करने के लिए मैं राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के तत्कालीन कुलपति प्रो. वैम्पट्टिकुटुम्ब शास्त्री के प्रति तथा निवेदन के अग्रसारण हेतु तत्कालीन प्राचार्य प्रो. गोपराजूरामा के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि उपलब्ध कराने के लिए तथा उत्साहसंवलित सहयोग के लिए मैं संग्रहालयाध्यक्ष एवं सभी संग्रहालय सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए मैं अपने वर्तमान कुलपति प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी एवं वर्तमान प्र. प्राचार्य प्रो. सर्वनारायण झा के प्रति अपना धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। यह ग्रन्थ प्रकाशित होकर यदि संस्कृत प्रेमियों को आनन्दित कर सका तो मैं सम्पादक के रूप में अपने को अवश्य ही सौभाग्यशाली अनुभव करूँगा।

विनयावनत

जर्नादनप्रसादपाण्डेय 'मणि'

सम्पादक

मातृका विवरण

शीर्षक (ग्रन्थनाम)	-	नृपविलास
रचयिता	-	शिवरामत्रिपाठी
विषय	-	काव्य
सङ्ग्रहस्थान	-	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय) गंगानाथझा परिसर, आजाद पार्क, इलाहाबाद (उ. प्र.)
आगम संख्या	-	२९८८४
आधार	-	कागज
लिपि	-	देवनागरी
पत्रसंख्या	-	१-१९ पूर्ण
प्रतिपङ्क्तिसंख्या	-	०७
प्रतिपङ्क्ति वर्णसंख्या	-	२७
मातृका समय	-	अनिश्चित
लिपिकार	-	अज्ञात

प्रस्तुत सम्पादन इसी एक ही मातृका के आधार पर किया गया है। यह अद्यावधि अप्रकाशित है। मद्रास विश्व विद्यालय से सन् १९७८ में प्रकाशित श्री के. के. राय द्वारा सम्पादित न्यू कैटलागस कैटलागारम् के वाल्यूम १० में इस ग्रन्थ (नृपविलास) के विषय में अधोलिखित जानकारी प्राप्त होती है।

NRIP VILASA by Shiva Ram Son of Krishna Ram Written for his brother Keshave Ram ALPT, dist - Bong Govt P. 58, IM 43, Rasib (RA SIB) VII. P. 5456 Stein 69. Extra 285. Trar university 10040.

यद्यपि कैटलागस् कैटलागारम् में शिवराम त्रिपाठी के ग्रन्थों में प्रस्तुत ग्रन्थ का उल्लेख नही है। यथा - Shive Ram Tripathi Elder Brother of Govind Ram, Mukund Ram and Keshave Ram son of Krishna Ram Grandson of Trilok Chandra. He quotes the Pari bhasendu shekher in Lakshmi vilas suffices to pleace him in the beginning of the 18th century.

Books :

1. Kanchan darpan (Vasavadatta Tika)
2. Kadambari Tika
3. Kavyalakshmi Prakaca
4. Dec Kumar Charit Bhasya
5. Nakshatra Mala and its - 0 Lakshmi vilasa
6. Bhupal bhushan
7. Rasratna Hara
8. Lakshmi Niwas abhidhan unadica
9. Vidya Vilasa
10. Vishamapadi Kavyaprakash tika

Catlogus Catalagaram, by Theader Ahfre chat
Franz Steinar VerlaghBh
Wiesbaden 1962.

अस्तु कैटलागस् कैटलागारम् में नृपविलास की चर्चा न होने पर भी न्यू कैटलागस् कैटलागारम् में इस ग्रन्थ के विषय में प्राप्त होने वाली जानकारी इस ग्रन्थ .की महत्ता को अभिप्रमाणित करती है।

सम्पादन करते समय मातृका के मूल पाठ को जगह-जगह पर संशोधित किया गया है तथा फुट नोट में सङ्केताङ्क के साथ मूलपाठ का भी उल्लेख कर दिया गया है। छन्दः पूर्ति हेतु कुछ पद प्रयोग बढ़ाये गये हैं, उन्हें श्लोक में [ ] इस संकेत चित्र के अन्दर रख दिया गया है।

- डॉ. जनार्दनप्रसादपाण्डेय 'मणि'

सम्पादक

श्रीगणेशाय नमः

अथ आशीः

वृषाकपी शङ्खहस्तौ शितिचन्द्रांशशोभिनौ।
विनायकयुतौ नागयुतौ स्तां वः सुखप्रदौ।।१।।

कार्तवीर्ये दशग्रीवे प्रलम्बे प्रबलेऽसुरे।
राजन् राम इवाराता वेधि शम्भुरिवान्धके।।२।।

कंसे सन्तमसे वृत्रे द्विरदे रदशालिनि।
नयज्ञप्राततत्त्वज्ञ! भूया हरिरिवारिषु।।३।।

दशशतनेत्रसमो नृपेषु भूयादशतबाहुपराक्रमश्च जन्ये।
दशशतवक्त्र इवावनिन्धर त्वं दशशतरश्मिसमानभाश्चिरायुः।।४।।

दशाशाविस्तृतयशो दशास्यान्तकवत्प्रभो।
सङ्ख्यवांस्त्वमसङ्ख्याकान् शाधि शत्रून्परन्तप।।५।।

जीव राजकन्णान्[1] हित्वा[2] मनोऽहित्वा[3] लभस्व शम्।
साक्षात्कृत्य रमाकान्तं प्राध्वं कृत्वा खलान् रिपून्।।६।।

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

१. " " 'कणो'

२. " " 'हत्य'

३. " " 'हत्य'

वाचंयमस्त्वं परपापकीर्तने
दोषेक्षणे मीलितरम्यलोचनः।
पुरन्दरश्रीर्भवतात्परं तपो
भूयाद् भवच्छत्रुगणः शुनिन्धयः।।७।।

नानाविधद्रविणदानविधानदक्षो
लोकोपकारनिरतो रिपुकक्षवह्निः।
कीर्तिप्रकाशितसमस्तदिगन्तरालो
जीया दिवस्पतिरिवामरसेव्यमानः।।८।।

चन्द्रोदये सिन्धुरिवात्र वृद्धिं
वसुन्धरेशाऽऽप्नुहि सर्वकालम्।
ध्वान्ते निशान्ते सवितेव सर्वान्
विनाशय स्वप्रतिपक्षिसङ्घान् ।।९।।

महाराजपूर्वाधिराजेति नाम त्वदीयं सदा स्यात्प्रभो! जागरूकं-
समुद्दण्डदोर्दण्डनम्रीकृतदिङ्गणस्तूयमानं त आशीरियं नः।।१०।।

श्रीरस्तु ते वित्तपतेरिवोर्व्या-
मकृत्रिमोद्दामपराक्रमस्य।
महन्द्रेपूर्व त्रिदशार्च्यमाना
कृष्णस्य हृन्मानसराजहंसी ।।११।।

रसेश्वराणां प्रतिबद्धदोर्भी
राजीभिराज्ञाश्रवणेच्छुभिस्त्वम्।

सिंहासनस्थः परिवेष्टितः स्या
आकाशगो रात्रिकरो यथर्क्षैः ॥१२॥

सा श्रीस्तवास्त्वर्थपतेरिवोर्व्या
जिष्णुप्रभावैः समवर्तिता च।
बलाहकैरर्थमुचः समाना
मा त्वामसद्भक्त्यमृतं मुरारेः ॥१३॥

श्रीरस्तु ते मृष्टप भूरिजीव
राजन्! गिरा तत्र भवान्सकौम्भिः।
जातः पटुः शत्रुनिरोध आदा-
वरेस्तवेश श्रुतिरत्र शीर्णौ॥१४॥

सुदक्षिणाः सन्तु सवाः कुले ते
मोहादिजालं तव भङ्गमेतु।
जीवैधमानः शरदां शतं त
आशीरयं सत्प्रतिपालकस्य॥१५॥

सदैव यायात्तु यशो दिगन्ता-
नर्वालिदन्तावलसाहितीनाम्।
विश्राणनैरर्थिभिरेव सार्धं
ददस्व पादं रिपुमस्तकेषु ॥१६॥

कलाधिनाथच्छवि ते दिगन्ते मरालशुभ्रं च यशः प्रयातु।
समस्तजन्तूपकृतिव्रतेषु चित्तं रतं नास्ति भवत्सु कस्य॥१७॥

द्वारे तवेमा निवसन्तु रथ्याः
पदातिसङ्घः शिविकस्तुरङ्गः।
ग्रामस्य नेताप्यभिमानशाली
कल्पद्रुमानल्पफलप्रदस्य ॥१८॥

कर्णाधिकर्णो व्ययशोभमानो दानप्रसङ्गे भव भूरिभूतिः।
जीयाश्चिरं नाशय शत्रुवृन्दमशीतरश्मिस्तिमिरं नु[४] लोके॥१९॥

वृषौ राजश्रियं नित्यां मयूरौ रणधुर्यताम्।
सिंहौ रम्यां मनीषां ते कृषीष्व[५] वसुधापते[६]॥२०॥

इत्याशीः

❐ ❐

मूलपाण्डुलिपौ पाठः
४. " " 'व'
५. " " 'कृपीष्ट'
६. " " 'वसुधात्पते'

अथ स्तुतिः

प्राङ्.केतनस्य तरणेर्दिनमध्यगस्य
सायन्तनस्य च रुचो विविधा भवन्ति[७]।
कालत्रयेऽप्यविकृतद्युतिशालिनस्ते
जातौ महान्[८] सवितुः सवितुर्विभेदः ॥१॥

भवा धानोश्चतुःषष्टिकलानिधिविधुस्तताः षोडश।
सन्दधाति भवच्चतुर्थांशगुणान् साम्यं कथङ्कारमवाप्नुयात्ते॥२॥

सिंहस्त्वदीयमृगयाविषयो नरेन्द्र
तस्याप्ययं तु मृगयाविषयो गजेन्द्रः।
तस्मात्कथं[९] मनुजकुञ्जरकुञ्जरेण
साम्यं त्वदीयमिह वर्णयितुं क्षमःस्याम् ॥३॥

अन्तःपुरप्रियतमाजितमध्यदेशो
मुक्ताविभूषणविनिर्मितये गजेभ्यः।
निष्कासयन्नपि न याति समीपमासां
तुल्यः कथं स भवता नरसिंह सिंहः ॥४॥

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

७. '' '' 'भवति'

८. '' '' 'माहान्'

९. '' '' 'काथम्'

द्विषन्तपस्त्वं भुवने प्रसिद्धो
विधुन्तुदो यस्य रिपुः प्रसिद्धः।
नृसोमसोमो वसुधातलेऽस्मिन्
कथं नु ते साम्यमहो लभेत ॥५॥

मित्रस्य चामित्रजनस्य सङ्गाद्
विकाशिनो हर्षवशाद्रुषा वा।
भवद्दृशोर्भूमिपतीश साम्यं[१०]
कथं समासादयतासरोजम् ॥६॥

अरुन्तुदं नो वदसि क्रुधाऽपि
वसुन्धरावासव यत्समित्सु।
जानन्ति तत्तत्त्वमहो न यज्ञाः
प्रियंवदस्यास्त्यवशंवदः कः ॥७॥

नित्यं स्फुरन्ती हरिदन्तराले
मरालशुभ्रा भवदीयकीर्तिः।
हावाभिरामप्रभ देव कस्य
चमत्कृतिं नो कुरुते जनस्य ॥८॥

भासि कौशिकवद् राजन् मध्येसभमहर्दिवम्।
याति कौशिकवच्छत्रुः कान्तारे तेऽह्नि नष्टदृक्॥९॥

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

१०. '' '' 'मास्यम्'

जयश्रियो बन्धनबाहुपाश-
द्वयेन भूयोऽनुकृतस्त्वया सः।
हरित्पतिर्जम्बुक ईर्ष्यया ते
दोषारिणान्योऽनुकृतः स्वरैः सः ॥१०॥

निरन्तरध्यानतया मुरारे-
स्त्वं पुण्डरीकाक्ष इहाविरासीः।
वने रिपुर्व्याघ्रभयात्त्वदीयः
स पुण्डरीकाक्ष इलाशयोऽभूत् ॥११॥

सर्वदा दायको राजन्नर्थी त्वमसि विश्रुतः।
सर्वदा दायको राजन्नर्थी तेऽरिरपि श्रुतः॥१२॥

लक्ष्मीराराात्त्वदस्तीश लक्ष्मीराराद् रिपोरपि।
द्वयोर्विशेषाभिव्यक्तिः स्फुटा याचकचर्यया॥१३॥

कण्टकान्तरगामित्वं परस्य चरणोपगः।
बहुभूतिस्तथारिस्ते राजत्वेन भिदा द्वयोः॥१४॥

ज्याकर्षणानुरक्तस्य तथा सानुचरस्य ते।
राजन् विश्वस्तप्रजस्य पराद्भेदः पराद्विधेः॥१५॥

श्रियान्वितो दुःस्वराणां हरस्त्वं
स्वसेवकानां श्रितवान् हरित्वम्।।
परस्तु राजन् हृतदारवर्गो
रक्षन् शिशुस्ते शिशुपालताञ्च ॥१६॥

दुरासदेषु क्षितिभृच्छिरस्सु
पदां निधानादहरितामितस्त्वम्।
दुरासदेषु क्षितिरुच्छिरस्सु
पदां निधानाद् हरितामितोऽरिः ॥१७॥

विहितापचितिर्लोकैर्बहुगर्ज[११]न्महाछविः।
हर्षात्त्वदीयाद्दोषाच्च सुहृद्दुर्हृत्तव प्रभो ॥१८॥

अर्वालीसेव्यमानस्त्वं नागजालोपशोभितः।
राजन्कनकसम्पत्तिः शब्दैररिरपीदृशः ॥१९॥

राधेय भिन्नोऽप्यमोघशालिस्त्वं बहुदायकः।
रत्नकोशोऽप्यकोशस्त्वं समवर्त्यपि नान्तकः ॥२०॥

विजयार्थमनेकानि कर्माणि चरसि प्रभो!
अरिष्टवारणो दक्षो हरिवन्न जनार्दनः ॥२१॥

तन्त्रशास्त्रविभिन्नोऽपि वित्तो मन्त्रमहोदधिः।
अवैद्यकागमोऽपि त्वं सुश्रुतो वैद्यजीवनः॥२२॥

स्वरप्रबन्धान्नोऽपीश सर्वतो भद्रशोभनः।
तथा समरसारश्च विज्ञातस्त्वं महीतले॥२३॥

शत्रुघ्नबन्धुर्धीराग्न्योहितकृल्लक्ष्मणान्वितः।
विभीषणानुगाभासि साङ्गदो रामचन्द्रवत्॥२४॥

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

११. " " 'गर्भु'

भवान्कुवलयानन्दसम्पादनमहायशाः ।
अप्पदीक्षित इव श्रीमान् सदाऽलङ्कारसम्भृतः।।२५।।

अत्रिनेत्रोऽप्यरिपुरां दाहको द्विजराजयुक्।
शिवान्वितः सर्वदैव भासि भर्ग इवापरः।।२६।।

ज्याकर्षणरतत्वं हि विख्यातं त्वद्रिपोश्च ते।
पाणौ वलयबन्धे च किणाच्छौर्य द्वयोः स्फुटम् ।।२७।।

अवनीतरिपोः सेयमवनी तव हस्तगा।
अवनी सर्वजन्तूनामवनीकमलेक्षण।।२८।।

वदान्या जिह्वियाञ्चक्रुर्विभयाञ्चक्रिरे परैः।
द्विजास्तजुहवाञ्चक्रुर्विभरामासिथावनिम् ।।२९।।

भग्नभासो भिक्षुभीत्या भुवि भूपास्त्वया विना।
ते स्वात्मम्भरयः सर्वे भवान् सर्वोदरम्भरिः ।।३०।।

त्वत्पदान्ते निपतिताः पुना राजत्वमागताः।
पूर्वरूपालङ्कृतिवृद्राजानः केचन स्थिताः ।।३१।।

सुहृदामापदां दाता दाता सौख्यस्य दुर्हृदाम्।
स्वर्यशोभिर्दिशां दाता दादाता भव भवार्थिन[१२] ।।३२।।

पटुर्भवाऽऽनन्दकृतौ मुक्तावल्या विभूषितः।
अनधीती तर्कशास्त्रे कैर्न[१३] स्तुत्योऽसि भूपते ।।३३।।

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

१२. '' '' 'भवोऽर्थिने'

१३. '' '' 'केन'

ज्योतिर्विदाभरणमाह जनोऽत्र कोऽपि
त्वां ज्योतिषागमविभिन्नमपि प्रमादात्।
सर्वात्मनाभरणतः सकलस्य जन्तो
स्त्वां वच्म्यहं तु सकलाभरणं प्रमोदात् ॥३४॥

पुराणैः पूर्वमीमांसापरो लोके[१४] च नीतिभिः।
त्वत्सभां भासयति हि सभां विद्वत्सभामिव॥३५॥

पराभवोद्भवा चिन्तामणिदीप्यातिशोभिनः।
नैय्यायिकस्येव न ते षडभिज्ञरिपोरपि॥३६॥

कामतन्त्र इवानङ्गरङ्गसङ्गातिशोभनः।
ततो रतिरहस्येन नारीणामतिरागकृत्॥३७॥

अवदानप्रचारेण समितिं तव भूपते।
सत्यतन्तुमिव प्राज्ञा भासयन्ति नयैस्तथा॥३८॥

श्रीमद्भोज इव त्वं विरचितसरस्वतीकण्ठाभरणः।
श्रीहर्षवन्नरपते रत्नावल्या प्रसिद्धिस्ते॥३९॥

यवनग्रन्थ इव त्वं नरेशशूर पररत्नमादितः[१५]।
अनवारः शत्रूणामकबरनामा च लोकेऽस्मिन्॥४०॥

प्रत्यर्थिश्रियमादाय प्रत्यर्थिश्रियमुञ्झसि।
भवानेवेदृशं [कर्म] कर्तुं धात्रा विनिर्मितः॥४१॥

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

१४. " " 'दर्कें'

१५. " " 'नलम्'

अर्थिप्रत्यर्थिभिः सार्धं यशो यान्तं रुणत्सि नो।
जिघृक्षोः परकीयस्य का ते समुचिता स्तुतिः॥४२॥

यतो यतस्त्वया शत्रुः प्रतापस्ते ततस्ततः।
नतो नत उदासीनः शूराणां त्वमतो मतः॥४३॥

इति स्तुतिः

अथ सभा

आपश्चित्रैकसुखदां व्यवहारोपयोगिनीम्।
बहुसंस्कारसहितां समज्ञां[१६] पृथिवीपते॥१॥

मिताक्षरामिवानेके धर्मशास्त्रविशारदाः।
सेवन्ते सुखसम्पत्यै हेमन्ते वनितामिव॥२॥

वृद्धिस्तु नैवास्ति गुणः कदाचि-
ल्लोपः क्वचिन्नित्यमनर्थकत्वम्।
विपर्ययस्ते सदसि क्षमेशा-
भ्यासस्य शास्त्राद् बहुशास्त्रजस्य॥३॥

अभ्यासस्य ह्रस्वता च दैर्घ्यं च तव संसदि।
धूतादिजस्य धार्मस्य पाणिनीय इव क्रमात्॥४॥

इति सभा

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

१६. " " 'ज्याम्'

अथ चित्रजातिः

कः शीते शीतनामेति ग्रीष्मे सन्तापयन्नपि।
जहार कान्तां रामस्य सर्वविद् रावणोऽसुरः॥१॥

स्पर्शवान् रूपहीनः कः का च प्रश्ने प्रयुज्यते।
जातिः प्रश्नोत्तरीयं तु सरसीरुहलोचन॥२॥

युग्मं सगुणो निर्गुणो वाऽपि कः पूज्यो वसुधातले।
समस्तजातिरुक्तेयं राजमान्योऽम्बुजानन॥३॥

देवाधिपः कः को मायापतिर्भानुपतिश्च सः।
इयमेकोत्तरा जातिर्हरिरम्भोजलोचन॥४॥

गुरोः कीदृग्वर्त्म रामः किं कृतः सीतया स्रजा।
इयं नामाख्यातजातिरवारि कमलासन॥५॥

कैलासे को निवसति कपर्दे कास्य शोभते।
कास्य गन्धगुणामूर्तिर्विषेऽनेऽपि स कीदृशः॥६॥

कास्यातिगृह्या नगरी मात्यःकोऽस्यापि देहिषु।
संहितादिक्रमान्तेयं जातिगङ्गाधरामरः॥७॥

का शोभायै जीमूतानां भोज्या मृत्युः
का स्वः स्रस्ता वेदच्छित्का मौ गौ वृत्ते
विद्युन्माला छन्दो जातिः॥८॥

का पूर्दग्धा हनुमता तस्यास्तं प्राह कञ्जनः।
व्यत्यासादक्षरस्यैकपदे लङ्केति चोत्तरम्॥९॥

कोऽपर्णायाः पतिस्तस्याः सपत्नी का पिता च कः।
समस्तव्यस्तयोरुक्तं गङ्गाधर इति प्रभो॥१०॥

व्यत्यासादक्षरस्यैव कर्म किं भाववाचकम्।
तत्संहितविपर्यस्तप्रश्ने देवमितीरितम्॥११॥

हरिं पूजय राजेन्द्र विषयाणां सुखाप्तये।
कर्माह कारं क्रियया चराद्यक्षरया तथा॥१२॥

का मानिनां प्राणगरीयसी कै-
मूको विहीनश्च समुच्चये किम्।
किं शस्त्रजात्योश्च समाससूत्रं
सौत्री प्रशंसा वचनैस्स्वजातिः ॥१३॥

कृष्णेन वृष्टिदहनाद्युत्पाताद् गोकुलं सदा।
ज्ञेयं द्रुततरं विज्ञैर्गुप्तमत्र क्रियापदम्॥१४॥

पदे पदेऽपि कृष्णेन प्राणिनां सुखवृद्धये।
अलं मोहेन महतामत्राभाविक्रियापदे॥१५॥

न रोगाते स्मरारातेरगारेयद्दशात्स्वकम्।
तद्दैवमत्र जानन्तु विज्ञा गुप्तं क्रियापदम्॥१६॥

मेश भूराजनीतिभ्यो निवृत्तस्त्वं धरातले।
यतो यशोधनं ताभ्यो गुप्तमत्र क्रियापदम्॥१७॥

सदा राष्ट्रे मेश दुःखं त्वं जनानां क्रियापदम्।
गुप्तमत्र विजानन्तु लघुवर्णा गुणार्णवाः॥१८॥

समितौ प्रस्फुराणां परमुखविध्वंसकं शुद्धम्।
तुल्यं शस्त्रं केवलमाकारतो भिन्नम्॥१९॥

कस्मै न शलाघते सूरिः प्रकृतेः प्रत्यये सिति।
तङ्श्च नाम किं जातिरियं शाब्द्यात्मने पदी॥२०॥

किं कीदृक् सुखदं नृणां जनः किं क इवेच्छति।
पद्माक्षराजवद्राज्यं जातिः स्याद् भेद्यभेदिका॥२१॥

अरण्यानीत्युत्तरं स्याद्यत्र तद् ब्रूहि भूपते।
जातिः पृष्टप्रश्नसञ्ज्ञामहारण्यं किमूचिरे॥२२॥

भवन्मुखेन्दुं संवीक्ष्य मदीयः कोऽभिवर्धते।
इयं सालङ्कारजातिः प्रेमाब्धिरिहोत्तरम्[17]॥२३॥

राजन् का रजनी रम्या
का निन्द्या नृपतेः सभा।
एकालापकजातिः स्याद्
दोषाकरनिषेविता ॥२४॥

कान्तकान्ताधरसुधास्वादतत्परचेतसः।
स्तनाद्रौ रममाणाश्च सशुचः पिहितक्रियाः॥२५॥

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

१७. " " 'चोत्तरम्'

शमन भयशमन भव भवसमरहर तं पुनः,

तेनोत्कर्ष विजात- परपरचयसदयः,

अस्य जनस्य च धनदो विज्ञैः

प्रोक्तैकमात्रिका जातिः ॥२६॥

यातनापारणां सा स्वां कीर्तिस्नेहरितं पुनः।

तेनोत्कर्ष विजानन्तु सुगुप्तं क्रियापदम्॥२७॥

किञ्चौर्यवृत्तिविषयं मधुसूदने द्यु-

सीतावृषे[१८]क्षणमुरोजयुगे सुखं किम्।

सूपं भुवोणलिकिमुह्यजनप्रणोहो

[है] यङ्गवीनम[१९]नले कठिनम्बभूव॥२८॥

किं वच्मि लोककुमुद व्रज चन्द्रिकायाः

स्फीतिक्रमं सुनयने मयि यत्पुराऽऽसीत्।

शङ्केऽधुना तदितरक्रममेक्ष्य जह्यां

[है] यङ्गवीनमनले कठिनं बभूव ॥२९॥

इति चित्रजातिः



मूलपाण्डुलिपौ पाठः

१८. " " 'षो'

१९. " " 'मु'

अथ सौधम्

सौधं ते भारतसमं स्त्रीसभापर्वशोभनम्।
अश्वमेधाद्दानधर्माद्राजधर्माच्च राजते॥१॥

प्रासादे तव मञ्जूषा रम्यभूषणसम्भृता:[1]।
पाणिनीया इवाभान्ति वृहद्रत्नप्रपूरिता:॥२॥

इति सौधम्

अथ वापिका

वापिकापुष्करं भाति फुल्लपुष्करमालया।
स्तूयमानसुगन्ध्येव गुञ्जन्मधुकरनि:स्वनै:॥१॥

इति वापिका

अथ जलक्रीडा

अविक्रमोऽपि भूमिष्ठ: स्वसरक्रीडनोद्भवम्।
सुखं त्वनुभवन्नित्यं सविक्रम उदीर्यसे॥१॥

इति जलक्रीडा

अथ वैश्या

भगवदैश्वर्यशोभि रक्तसङ्घसमाचितम्।
वैश्याकुलं तवाऽऽभाति महाभारतयुद्धवत्॥१॥

इति वैश्या

अथ रतिः

कञ्चुक्या प्रातिबन्धस्य स्वर्णादिद्युतिहारिणः।
भवत्करप्रदानेन मोक्षः कस्य नास्ति हि॥१॥

सरत्नमालः सशिरोमणिस्त्वं
लीलावतीसद्वहलाघवज्ञः।
ज्योतिः प्रबन्धान्नरलोकपालो
नाधीत्य चित्रं किल ते न पुंसाम्॥२॥

नूनं वासवदत्तेव नानाश्लेषमनोहरा।
शारदेन्दुमुखीनां भाति केलिस्त्वया सह॥३॥

इति रतिः

अथ विपरीतरतिः

रतान्तरेषु वनिताः पुम्भावं समुपागताः।
राजसत्तम राजन्ते तद्गुणालङ्कृताः समाः॥१॥

इति विपरीतरतिः

अथ चन्द्रिकाविहारः

अवैयाकरणोऽपि त्वं कौमुदीसमनोरमाम्।
परिशीलयसि क्ष्येश विज्ञत्वं त्वन्यदेव ते॥१॥

इति चन्द्रिकाविहारः

अथ स्त्री-अनुरागः

स्वागता स्रग्धरा गौरी सुमुखी मञ्जुहासिनी।
त्वां सेवते तथापि त्वं छन्दोविचितिभेदभाक्॥१॥

इति स्त्री-अनुरागः

अथ वाटिका

मेषगोयुग्महरिभिर्मृगालिभिरथ शोभिता।
रोहिणीमल चित्रा ते ज्योतिर्विद्येव वाटिका॥१॥

छन्दः प्रबन्ध इव ते विभाति वाटिका नराधीश।
नूनं कुसुमविचित्रा चम्पकमाला प्रहर्षिणां यत्र।२॥

आर्या विपुला जगती कनकलता न विपुलता वृहती।
अतिरुचिरा मालतिका सोमकुलं पुष्पिताग्रा च॥३॥

युग्मम् इति वाटिका

अथ सामान्यदेशः

शिशुरिव धात्रीयुक्तः पातालमिव बहुपलाशश्च।
अमृतान्वितः ससोमः क्षीरसमुद्रेण तुल्यश्च॥१॥

विट इव बहुतरमदनो गणिकागणसंयुतश्चापि।
षट्कर्मेव स बहिर्बहुगायत्री समेतश्च॥२॥

सार्कोदिवःसदेशः समरुर्भूमिलोकवत्।
कन्दवल्लीगुच्छयुतो विभाति मकरन्दवत्॥३॥

इति सामान्यदेशः



अथ षड् ऋतु-सूर्य-चन्द्रोदयाः

नेत्रोपयातपटवासकणच्छलेन
शीतालुराशु परिगृह्य परं दुकूलम्।
तत्कन्दुकं स्वमुखफूत्कृतिभिः कवोष्णं
नेत्रे निधाय विरराम चिराय रामा ।।१।।

[कामातुराङ्ग]कमनीयरुचिर्नवोढा
कामं विहृत्य दयितेन समं सुकेशी।
वेणीं बबन्ध करपङ्कजकोशमध्ये
भृङ्गावलीवरुरुचे किल केशपङ्क्तिः।।२।।

ताम्बूलरागगमनात्वधरोष्ठबिम्बाद्
वासन्तपुष्पनिकरापगमात्कचेभ्यः।
गात्रे प्रभूतपुलकावलिसम्भृतेन
वासो विशेषपरिमर्दनकल्पनेन।।३।।

गात्रे श्रमालसतया च निरञ्जनत्वात्
नेत्रस्य पत्ररचनापगतेः कपोलात्।
भेदो बभूव न वसन्तमहोत्सवान्त-
रागान्धकामिजनरम्यरतान्तयोश्च।।४।।

प्राणेश्वरप्रहितकञ्चुकबन्धनेन
यत्कान्तया सुखमवापि न तत्परेण।
व्याख्यातुमस्ति किल शक्यमभूदपूर्व
वक्राम्बुजद्युतिमुपाश्रितया तया नु।।५।।

पाणिनि कृतिरिव......।[२०]

द्युभाततिरपि प्रबभूव तद्वत्।

पातङ्गतापि दृग्पूरणगौरवेण

मद्वत् ततो झटिति जातुषकन्दुकेन॥६॥

का ते[२१] स्तने निपतितं पतिसन्निधाने

तत्स्पर्धया नु तुलया नु रसान्नु नूनम्।

पार्श्वे प्रियस्य शुशुभे वनिता सपत्नी

पाणिप्रणुन्न इह कन्दुक आजगाम॥७॥

तत्स्पर्शदुःखवशतो हृदयमुप [स्पृश्य] सा स्थितवतीव।

बहिःप्रदेशे किञ्चिद् किञ्चिद् बहुलोक[२२]-कार्यापि॥८॥

गगनतटीव सुविलसद्बहुलाङ्गारकयुता शकटिः।

अङ्गारधाानिका विनतरत्यपथे पादं मधुना को न मोहितः॥

मीनोपभोगं कुरुते यतोऽहं सोऽप्यतन्द्रितः[२३]॥९॥

सम्प्राप्य मैथुनं मासं तपत्यतितरां रविः।

अतो ग्रीष्मे सुखं केन लभ्यते देहधाारिणाम्॥१०॥

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

२०. अनपेक्षितेतरच्छन्दोविधानकारणात् प्रकृतप्रकरणे छन्दोभङ्गकारणात् श्लोकपूर्तिः कर्तुं न शक्यते।

२१. " " 'ता'

२२. " " 'ह'

२३. मूलपाण्डुलिपौ पद्यं पङ्क्तित्रय एव उपलब्धम्।

सन्तापयति शय्यायां तरुणीं नीरदो यथा।
सन्तापयति वर्षासु वियुक्तां नीरदस्तथा॥११॥

त्यजन्ति कञ्चुकं केचिद् भोगिनः शरदागमे।
कञ्चुकं धारयन्त्यन्ये भोगिनश्च रदागमे॥१२॥

द्रुतं गच्छति हेमन्ते भानुः शीतभयादिव।
यौवनोह्नस्तनी कान्ता कामेवालिङ्ि्गतुं निशि॥१३॥

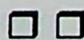
स्वीयानुवर्तनं योग्यं लोकानामिति दर्शयन्।
शिशिरेण युतो भानुः श्रयते स हि मादिशम्॥१४॥

क्रीडार्थं कलबालेन विमुक्तारुणमण्डली।
चक्रिकेयं भ्रमत्यभ्रे नैकमार्गेण सर्वदा॥१५॥

दोषालोकविलोकनान्न भवतान्मे मार्ग इत्याशया।
दत्वा कज्जलविन्दुमिन्दुरुदयत्यारक्तबिम्बो न्वहम्।
वीक्ष्यासौ तरुणीमुखं गतमदः पाण्डुश्रमाम्भोद वै।
विष्वग्विस्मृतकज्जलो भ्रमति तच्छंसन्ति पक्ष्मापरे॥१६॥

जेतुं जनानवशगान् सखि शातकुम्भं
कुम्भं शशाङ्कमवलं व्यसमेति कामः।
तीर्त्वोदधिं स्ववशगान् विरचय्य लोकान्
द्वीपान्तरे निवसतो दयितं विना मे ॥१७॥

इति षड्ऋतु-सूर्य-चन्द्रोदयाः



अथ यशः

सौवातमम्भ इव ते करवारिदेन
मुक्तं पयो बहु च नीपकपाणिशुक्तौ।
तज्जातकीर्तिनवमौक्तिकहारयष्टे-
रेता वहन्ति परितो हरिदङ्गना हि ॥१॥

त्वद्यशोमौक्तिका नेयं[२४] पतिता भववारिधौ।
प्रत्यर्थिकीर्तिशफरी कथं यायाद् दिगन्तरे॥२॥

इति यशः

अथ वायुः

आयान्तीं सन्ध्ययाऽऽज्ञाय चन्द्रचूडां विभावरीम्।
पुरा तस्याः प्रमोदेन समणिर्वासरोऽप्यगात्॥१॥

कान्तानां सुरतपरिश्रमालसाना-
मादत्ते श्रमजलमौक्तिकं प्रदीपे।
दोषेऽपि प्रियसविधेऽपि वायुचौरो
भिन्नोऽयं भरहरणेच्छयेव कान्तः॥२॥

इति वायुः

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

२४. " " 'नायं'

अथान्दोलम्

इडु: किं चपलायितः किमु विधू द्वौ द्वेषिणावुत्स्थितौ
मेघश्यामवने दिशाद्वयगतं कि स्विद्बलाकाद्वयम्।
आहोस्वित्परिखेलति प्रियतमा दोलास्थिता
....[२५]।।१।।

यद्राज्ये दृश्यते शुण्डा द्विरदेन यतस्ततः।
द्विजिह्वता च कौटिल्यं सर्पेऽद्येव न मानवे।।२।।

श्रूयते चेत्करच्छेदो भागधेयस्य भूभृताम्।
द्विजवं घनशब्दस्तु सार्थः पञ्जरपक्षिणि।।३।।

क्षणे क्षणेऽपि मित्राणामुदयोऽपि न दोषकृत्।
राजन्ते बलिबन्धेन स्त्रियोऽपि न परं हरिः।।४।।

उपलब्धिररिष्टस्य वनेऽद्येव कलेरपि।
मा वास्योत्तरदले स्थितिर्नीडस्य तदृते[२६]।।५।।

सूर्याचन्द्रमसोरेव पितापुत्रविरुद्धता।
भयोगादन्यत्र शूलं नो पीडा सुमनसामलम्।।६।।

पुष्पवन्तौ गृहक्लेशशरभेदविदौ ध्रुवम्।
सार्वसहेय एवास्ति नूनं बुधविरुद्धता।।७।।

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

२५. मूलपाण्डुलिपौ अन्तिमपादो न लभ्यते।

२६. '' '' 'स्थितिनीगस्यहते'

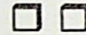
व्यभिचारविपक्षौ च तर्कशास्त्रे श्रुतौ तथा।
जातिबाधकहेतू नावनस्थितिसङ्करौ॥८॥

प्रकृतिप्रत्ययेक्षा च वर्णलोपो विपातनम्।
उपसर्गाभियोगश्च शब्दशास्त्रे न तद्भुवि॥९॥

अनेकाह्निकनिर्माणतत्परा बहवो द्विजाः।
ममाभाष्यकृतस्तुल्या विभान्ति विषये सदा॥१०॥

तन्मुखदोजावेगवशेन यात्युभयतः किं स्यान्नु यदत्र
किं वस्तुतः गायन्ती समुचितमीरयन्त्यमन्दं कद्यूरुष्टति
नमनात्तडिद् यान्ती कौसुम्भां वरचलनेक्ष्यशाणा
पाँश्चा दोलास्था हरति वने प्रिया मनो मे[२७]॥११॥

इत्यान्दोलम्



मूलपाण्डुलिपौ पाठः

२७. मूलपाण्डुलिपौ पद्यमिदमित्थं छन्दोभङ्गरूपेण लभ्यते।

अथ प्रजाः

अस्फोटा अप्यनेकार्थप्रकाशनधुरन्धराः।
अनेकगुणवृद्धिज्ञा अनधीतागमा अपि॥१॥

निरस्तवेश्या अपि स्वगणिकासक्तचेतसः।
धनदा अप्यपौलस्त्याः पौरस्त्या अपि नागराः॥२॥

विज्ञा अपि वृषप्रज्ञाः सनाथा अपि नो वृषाः।
दोषाकरस्था अपि नो दोषलेशस्पृशोऽनिशम्॥३॥

दानदा अपि नैवेभा वीतयोऽपि न घोटकाः।
कवयोऽपि न दैत्येज्याः शुचयोऽपि न वह्नयः॥४॥

नानाथा अपि नो शब्दा वाडवा अपि नाब्धिगाः।
चित्रा[२८]नेकक्रियासक्ता अपि नैवाहितुण्डिकाः॥५॥

द्विरेफा अपि नैते मधुपाः सुमनः प्रियाः।
अनवर्णा अप्यवर्णा वाच्यासक्तैकचेतनाः॥६॥

लालाटिका अप्यखिलकार्यासक्ता दिने दिने।
साक्षात्प्रतिपदो विज्ञा अर्थिनोऽपि न याचकाः॥७॥

पूर्णकामा अपि भृशं जितकामा न शङ्कराः।
शङ्करा अपि नैवेशा ईशा अप्यवृषध्वजाः॥८॥

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

२८. " " 'चल्य'

भर्गा अप्यभर्गा उग्रा अप्यत्रिलोचनाः।
तथापि नाकिनो नैव विरूपाक्षाश्च साम्बराः॥९॥

अनेकपानद्विरदा द्विरदेशा न यूथपाः।
यूथपाश्चाकरोराश्च वृहद्-वंशाङ्कुरा अपि॥१०॥

हरिलीलाशोभमानाः श्रीमद्भागवता अपि।
नैव व्यासगिरो गीता गीतापठनतत्पराः॥११॥

क्षमाभृतोऽप्यगिरयोऽ क्षमाभृत उदाहृताः।
तुरीयाश्रमभाजोऽपि परित्यक्ताश्रमस्पृहाः॥१२॥

अलब्धवर्णा अप्येके लब्धवर्णपुरोगमाः।
सुखं वसन्ति मनुजा दनुजारिपरायणाः॥१३॥

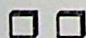
इति प्रजाः

अथाश्वः

भृत्येन फूत्कारनिरस्तलोम्ना प्रोत्तुङ्गिताग्रोऽनवोऽयमश्वः।
ग्रीवां पदः पुच्छमतीव धुन्वन्कण्डूयते नर्तनमाचरन्वा॥१॥

द्वित्राणि गृह्य चरणं तुरगस्य केचित्
बाल[२१] नियम्य पुरतः स्थितिमान आसन्।
कीले पदेऽथ निखनत्पयसः क्षणेज
जग्मुस्तदुत्प्लवनवत्प्लववत्समन्तात् ॥२॥

इत्यश्वः



मूलपाण्डुलिपौ पाठः

२१. " " 'वलां'

अथ गजः

विषाणिनो नीरदाभाः पादा इव महीभृतः।
गजास्ते[३०]भुवि राजन्ते मणि[३१]निर्झरवर्षिणः॥१॥

भाति राजन्करेणूनां द्वारि ते निवहः सदा।
नीलाम्बुदनिभोऽरेस्तु प्रति[३२]पत्काद्यमक्षरम्॥२॥

इति गजः

अथ खड्गः

अयोविशेषशालीने[३३] खड्गो विपुलकोशयुक्।
स्वर्णस्फीतमहाकीर्तिर्भवानिव वधे पटुः॥१॥

इति खड्गः

अथ केतुः

अनेककोटिनिधिवद् बहुस्वर्णसमन्वितः।
भाति सुन्दरकाण्डेन रामायणमिदं धनुः॥१॥

केतोस्त्वदीयस्योत्थानं निदानं शत्रुमण्डले।
दुर्भिक्षवधबन्धानामिति विज्ञाः प्रचक्षते॥२॥

इति केतुः

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

३०. '' '' 'गजता'

३१. '' '' 'म'

३२. '' '' 'परि'

३३. '' '' 'आ'

अथ शिविका

स्तनकलशद्वयरम्या लसत्प्रवेणिश्च सद्वंशा।
शिविकात्यन्तसुवर्णा शत्रोर्योषेव बलनीता॥१॥

इति शिविका

अथ पुरःसराश्वः

चमूचराश्चारुचमूरुवेगा वेगाद्विकीर्णामलचामरैस्तु।
सञ्जातपक्षा इव पक्षपातिपुरोगमस्यार्वगणाः पुरोगाः॥१॥

इति पुरःसराश्वः

अथ गजः

सुरलोक इवाभाति गजस्ते दानवारिभिः।
रम्यैरनेकगन्धर्वैः सेव्यमानः समन्ततः॥१॥

इति गजः

अथ रथाः

पीलु[३४]कम्बलिनो द्वैपा वैयाघ्राः[३५] काम्बलाञ्च लाः।
संयुक्तचक्रा राजन्ते शताङ्गदिवसा इव॥१॥

इति रथाः

अथ धूलिः

तव सैन्यात्समुद्धूतं रेणुमभ्रंलिहं क्षणात्।
धूमं मत्वारिमशकाः सर्वदिक्षु प्रसुस्रुवः॥१॥

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

३४. " " 'ड्ड'

३५. " " 'प्रा'

सर्वावयवकाठिन्यसम्पृक्तो[३६]ऽपि मुखे मृदुः।
कान्तास्तन इवाश्वोऽयं भाति हारादिभूषितः॥२॥

यूनां ते सर्वसैन्यानां प्रस्थानेषु मुहुर्मुहुः।
....[३७]॥३॥

भूमण्डले भ्रमति भूप तुरङ्गमस्ते पायोधरे परिसरे नखलक्ष्म कुर्वन्। कान्तस्य हस्त इव पी ....[३८]॥४॥

मुखमार्जनमेवाभूदकालपरितौषधम् ।
......................................[३९]॥५॥

वरतासमेते ....।
....[४०]॥६॥

यांनितम्बयुगलैः परिणाहभाजि ......।
....[४१]॥७॥

सपत्नीमुखचिह्नेन संयुतस्य प्रियोरसः।
कान्तादेहस्य संस्पर्शचिह्नैर्नो सहते हयः॥८॥

इति धूलिः

मूलपाण्डुलिपौ पाठः

३६. '' '' 'सम्पक्षौ'

३७. '' '' द्वितीयपङ्क्तिर्न प्राप्यते।

३८. '' '' एतदग्रे पाठो न प्राप्यते।

३९. '' '' एतदग्रे पाठो न प्राप्यते।

४०. '' '' एतदग्रे पाठो न प्राप्यते।

४१. '' '' एतदग्रे पाठो न प्राप्यते।

अथ प्रस्थानम्

प्रस्थाने गिरिकल्पकुञ्जरघटाघण्टारवाकर्णन-
त्रासोद्भूतकलेवरप्रचलनप्रभ्रंशिनस्ते द्विषः।
आलिङ्गन्ति पुनर्भविष्यति न नौ योगावियोगातुरा
भूमिं प्रत्यहपालितां प्रचलितां राजस्वकन्यामिव॥१॥

इति प्रस्थानम्

अथ युद्धाध्वरः

युद्धाध्वरेऽरिपशवो दीक्षितेन त्वया हताः।
यशः साम्नायमेतेषां प्रतापज्वलने कृतम्॥१॥

इति युद्धाध्वरः

अथ द्वन्द्वयुद्धम्

त्वदीयानां शात्रवाणां द्वन्द्वस्य विषये रणे।
एकशेषस्त्वदीयानां सरूपाणामिवाभवत्॥१॥

इति द्वन्द्वयुद्धम्

अथ सन्धिपलायने

जनुषा ते धनुष्यस्मिन् रक्षता क्ष्मां त्वया द्विषः।
गच्छन्तीच्छन्ति वाञ्छन्ति काननं जीवनं धनम्॥१॥

इति सन्धिपलायने

अथ रिपुपलायनं यशश्च

यद्ययुर्हरितामन्ते परागतशुभाः पराः।
तत्त्वदीययशो दौत्यं चक्रुर्जीविताशया॥१॥

इति रिपुपलायनं यशश्च

अथ रणभूमिः

शिवाविलासास्पदमुग्रभूतैः

सा[४२] सेविता भूरिकरोटियुक्ता।

नरेशयुद्धस्य धरा स्वकीयं

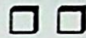
महेशमूर्तित्वमभिव्यनक्ति॥१॥

इति रणभूमिः

त्रिलोकचन्द्रात्मजकृष्णरामसूनुस्त्रिपाठी शिवरामनामा।

बन्धोर्मुदे केशवरामनाम्नश्चक्रे निबन्धं नृपतेर्विलासम्॥१॥

इति श्रीशिवरामकृतो नृपविलासः



मूलपाण्डुलिपौ पाठः

४२. '' '' 'स'

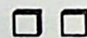
निवेदनम्

करिकुम्भौ विभातस्ते स्तनाविव जयश्रियः।
फलकाञ्चलसञ्छन्नौ परसंस्पर्शशङ्क्या॥१॥

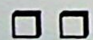
सरेजे कटयुगलं फलकसमाच्छादितं सङ्ख्ये।
शिलष्टं तवासिशम्पापातजातभयमिव शत्रोः॥२॥

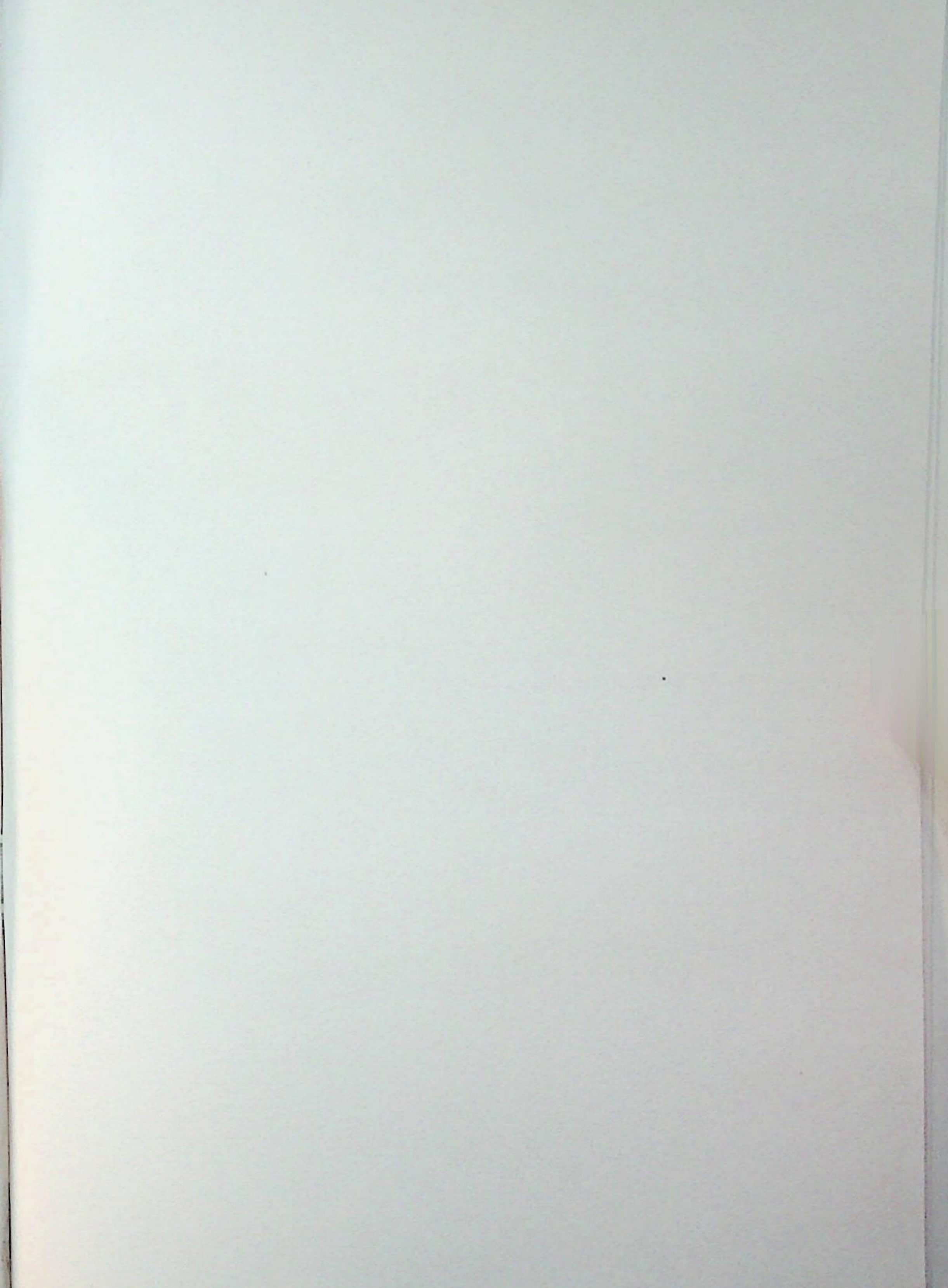
काव्यानि पञ्च तनुतेऽपि च पञ्च संख्याः
टीकाश्च सप्तदश चैक उणादिकोशः।
भूपालभूषणमयं रसरत्नहारो
विद्याविलास इनपूर्वशरत्फलाद्याः ॥३॥

ग्रन्थान्मया विरचितान्परिशीलयन्तु
शीलान्विताः सुमनसो मनसो मुदे मे।
यद्वह्निशोधितमनल्परुचा समेतं
जाम्बूनदं तदिह मौल्यविशेषलभ्यम् ॥४॥



लिखितं काश्यां मणिकर्णिकासमीपे।
ईश्वरपुरी राम राम शिव शिव॥







राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसरः

चन्द्रशेखर-आजादोद्यानम्

प्रयागः - 211002

Design : Brahmanand